Prof. Shashi Sharma, Principal
Professor, Department of Political Science
e-mail: prof.shashisharma@gmail.com

Political Sociology, PAPER VII

Course Content-12: 'Relationship between Politics and Society in India'

भारतीय राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(Sociological Study of Indian Politics)

राजनीतिक समाजशास्त्रवेत्ताओं द्वारा भारत की राजनीति के संदर्भ में जो अध्ययन विश्लेषण या अनुसंधान किया गया है उसमें जहां एक ओर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक अभिवृत्तियां राजनीतिक प्रवृत्तियों को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं, वहीं दूसरी ओर यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक प्रवृत्तियों को अपनी इच्छानुरूप मोड़ने में सक्षम होती हैं। दृष्टान्तस्वरूप **नारमन डी. पामर एवं फिलिप्स** द्वारा आरंभिक अध्ययनों में यह दर्शाया गया है कि सामाजिक अभिवृत्ति एवं व्यवहार राजनीतिक प्रवत्तियों को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। वहीं बाद के अध्ययन–विश्लेषणों में रुडोल्फ एण्ड रुडोल्फ तथा रजनी कोठारी आदि द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि राजनीतिक अभिवृत्तियां एवं राजनीतिक व्यवहारों का सामाजिक अभिवृत्तियों एवं सामाजिक व्यवहारों पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

आमतौर पर सभी विद्वज्जनों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीति शून्य में क्रियाशील नहीं होती है, उसे राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत मौजूद समाज में ही सक्रिय होना पड़ता है, इसलिए व्यवस्थागत राजनीति के तत्त्वतः अध्ययन के लिए वहां की सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना अति आवश्यक है। यह तथ्य भारतीय राजनीति के तात्त्विक अध्ययन के लिए भी प्रासंगिक है। इस दृष्टि से भारतीय राजनीति के तथ्यपरक अनुभवजन्य जानकारी के लिए भारतीय समाज और राजनीति के सामाजिक आधारों की जानकारी अपरिहार्य है।

अन्य व्यवस्थाओं की राजनीति की भांति भारतीय राजनीति को भी आधार.सामग्री प्रदान करने, राजनीति का स्वरूप निर्धारण करने एवं राजनीति को गतिशील बनाने में मुख्य भूमिका यहां के गैर राजनीतिक (सामाजिक एवं परिस्थितीय) तत्त्वों की होती है। ये तत्त्व देश की राजनीति को पूरी तरह अपने प्रभाव के दायरे में रखते है, अतः यहां उन तत्त्वों की विशेष रूप से चर्चा की जा रही है।

भारतीय राजनीति का सामाजिक आधार (Social Bases of Indian Politics)

भारतीय राजनीति के सामाजिक आधारों में जाति, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता धर्म, भाषा, कुटुम्ब आदि कारक मुख्य है।

जाति और राजनीति(Caste and Politics)

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में जाति और राजनीति के अन्योन्यश्रयी संबंधों का अध्ययन करने वाले विद्वज्जनों में **रजनी कोठारी, आन्द्रे बेतेई, एल.आई. रुडोल्फ, एम.जी. बेली, एच.ए. गोल्ड, टी.के. ओमन, कैथलीन गफ, एडमण्ड लीच, आइजेक हेरॉल्ड, एम.एस. राव, एम.एन. श्रीनिवास, ए.सी. मेयर, योगेश अटल** आदि प्रमुख हैं। **प्रो. रजनी कोठारी ने 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स'** में जातियों के राजनीतिकरण पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की हैं। आमतौर पर जाति और राजनीति के बीच अन्तर्क्रियात्मकता को राजनीति में जातिवाद' कहा जाता है जो दरअसल जातियों का राजनीतिकरण है। जाति के सामाजिक आयामों की पृष्ठभूमि में ही जाति के राजनीतिक आयामों का आधारतत्त्व निहित होता है। राजनीति और जाति की आपसी क्रिया के परिणामस्वरूप राजनीति जाति से प्रभावित नहीं होती है, बल्कि जातियों का राजनीतिकरण हो जाता है। व्यवस्था में

विद्यमान् स्पर्धात्मक राजनीति की गतिविधियों ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जाति को उसके अराजनीतिक संदर्भ से बाहर निकाल कर सत्ता–निर्माण एवं व्यवस्था–संचालन में एक नयी हैसियत प्रदान की है।

भारत की चुनावी राजनीति ने जाति व्यवस्था की अस्मिताओं में नवजीवन का संचार किया है। जातियों की राजनीति में इस नई हैसियत की वजह से परम्परागत जाति प्रथा का क्षय हो गया है और राजनीतिक सत्ता–निर्माण के एकमात्र मजबूत आधार के रूप में जाति की वैधता स्थापित हो जाने की वजह से भारत के चुनावी समीकरण में जातीय गणित का महत्त्व काफी बढ़ गया हैं। व्यवस्था में मौजूद राजनीति की परिवर्तित परिस्थितियों के आलोक में चुनाव के समय विभिन्न जातियों में संख्या बल के आधार पर उम्मीदवारों का चयन, जातियों के बीच आन्तरिक दलबन्दी और जातियों के राजनीतिक–आर्थिक संबंधों के गणित में भी बदलाव अपेक्षित है। लेकिन, जब सत्ता के दावेदारों मे कुछ जाति विशेष के लोगों का नाम शुमार होता है, तब ऐसी स्थिति में जातीय गणित का बहुत महत्त्व नहीं रह जाता है। गोल्ड का कहना है कि आज सत्ता–प्राप्ति की लालसा की व्यावहारिक होड़ में राजनीति को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों की भांति जाति भी एक प्रमुख तत्त्व मात्र रह गया है। इस संबंध में हेरॉल्ड ए. गोल्ड की उक्ति है कि जाति राजनीति के निर्धारक तत्त्व की भूमिका से गिरकर सिर्फ उसे प्रभावित करने वाला एक परिवर्त्य बनकर रह गयी है।

भारत के संदर्भ में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यहां संस्थाओं का आधुनिकीकरण और बड़े पैमाने पर राजनीतिक एकीकरण इसीलिए संभव हो सका, क्योंकि यहाँ की क्रियाशील राजनीति में जातीय अस्मिताओं को खुले रूप में स्वीकार किया गया, उन्हें राजनीतिक स्तर पर गोलबन्द किया गया और संख्या बल तथा सामाजिक हैसियत के अनुरूप उन्हें राजनीतिक लेन–देन में साझीदार बनाया गया। जातियों द्वारा अपने संगठन के नये लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए खुले सेक्युलर रूपों को अपनाया जाने लगा। जातीय सभाएं, जातीय सम्मेलन, जातीय संस्थान, जातीय संघ, आदि इन्हीं रूपों के उदाहरण हैं। इन्ही रूपों के माध्यम से जातियां राजनीति में अपनी ताकत, हैसियत बढ़ाने के लिए तथा राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभाएं, सम्मेलन व प्रदर्शन आदि करती रहती हैं और इन्हीं कार्यक्रमों के बल पर जातियां विभिन्न दलों के साथ सौदेबाजी भी करती हैं। लोकतांत्रिक प्रक्रिया के मजबूत होने के क्रम में धीरे–धीरे जाति संघ राजनीतिक समूहों में परिवर्तित होते गये और संख्या बल के आधार पर राजनीति में अपनी ताकत और हैसियत की दावेदारियां भी करने लगे।

राजनीतिक प्रक्रियाओं में जाति की भूमिका (Role of Caste in Political Process)

जहां तक भारतीय राजनीति और जाति का सवाल है, यहां दोनों परस्पर संबद्ध हैं और दोनों ही अपने आप को संगठित करने के लिए एक दूसरे की मदद लेते हैं। यहां की राजनीति में जातियों की भूमिका को निम्नांकित संदर्भों में बेहतर समझा सकता है :

1. जातियां संगठित होकर देश में सामूहिक स्तर पर जनमत का निर्माण करती हैं, इसीलिए चुनाव में जिन जातियों के नेताओं के बीच राजनीतिक दल के प्लेटफॉर्म पर जाति आधारित चुनावी तालमेल होता है वहां मतदान व्यवहार के प्रदर्शन के समय सामूहिक स्तर पर संबद्ध जाति के पूरे जत्थे का वोट उस पार्टी को हस्तांतरित हो जाता है।
2. जातियां संगठित होकर राजनीतिक–प्रशासनिक निर्णय को भी प्रभावित करती है। इस रूप में ये शक्तिशाली सक्रिय दबाव समूह की भूमिका निभाती हैं। अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग को दिये जाने वाले संवैधानिक आरक्षण को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।
3. भारत में समस्त चुनावी प्रक्रिया के संचालन का आधारतत्त्व जातियां हैं। निर्वाचन क्षेत्रों के निर्माण से लेकर विभिन्न दलों द्वारा प्रत्याशियों का चयन, उनके चुनाव जीतने की गारंटी, सदन मे बहुमत प्राप्त करने के लिए राजनीतिक जोड़–तोड़, चुनावी समीकरण तथा सरकार के गठन तक समस्त प्रक्रियाएं जातीय तत्त्वों को मूल आधार बनाकर संचालित की जाती है। संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए लोकसभा एवं विधानसभाओं में सीटे आरक्षित की गयी हैं। निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन करते समय प्रत्याशियों की जीत को ध्यान में रखते हुए जाति तत्त्वों को प्रधानता दी जाती है। चुनाव में दूसरी पार्टियों के साथ सीटों का तालमेल तथा प्रत्याशियों के टिकट बँटवारे में मुख्य आधारतत्त्व जाति होता है।
4. चुनाव अभियान में मतदान व्यवहार के निर्माण और निरूपण का आधार भी जातियां ही हैं। जिस चुनाव क्षेत्र में जिस जाति के मतदाताओं की बहुलता होती है, वहां राजनीतिक दलों की उम्मीदवारी भी उसी तथ्य को माध्यम बनाकर तय की जाती है और प्रत्याशियों की जीत भी उसी संख्या के अनुपात में निश्चित हो जाती है। निर्वाचन क्षेत्र में जिस जाति की आबादी सबसे ज्यादा होती है और दल का उम्मीदवार उसी जाति से होता है तो उसकी जीत बहुत आसान हो जाती है, क्योंकि मतदाता मतदान करते समय जाति के अतिरिक्त अन्य गुणों. को गौण मानते हैं और चुनाव प्रत्याशी के प्रसंग पर जाति के अतिरिक्त किसी अन्य विकल्प पर कोई रुचि नहीं दिखाते हैं। इस प्रकार राजनीतिक भर्ती में जातियों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5. भारत में राजनीतिक दलों के अस्तित्व–निर्माण का आधार भी जातियां ही हैं। जातियों को विभिन्न राजनीतिक दलों के कैडर (Cadre) वोट के रूप में चिन्हित किया जाता है। बिहार, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, केरल आदि की चुनावों एवं 16वीं लोकसभा के चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा संचालित चुनावी प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में जातियों की भूमिका को ज्यादा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। बिहार में राजद, उत्तर प्रदेश में बसपा, सपा तथा दक्षिण में द्रमुक, अन्नाद्रमुक पार्टियां इस प्रसंग का बेहतर उदाहरण हैं।
6. भारत के कई राज्यों में जातीय प्रभावक समूहों द्वारा राजनीति को प्रभावित करने का कार्य किया गया है। दृष्टान्तस्वरूप तमिलनाडु में नाडार, गुजरात में क्षत्रिय महासभा, बिहार में कोइरी–कुर्मी महासभा, यादव महासभा एवं कायस्थ महासभा, आदि जातीय समूहों द्वारा धरना, प्रदर्शन, सम्मेलन व सभा आदि का आयोजन करके व्यवस्था की राजनीति को कई तरीकों से प्रभावित किया जाता रहा है।
7. मंत्रिमंडल के निर्माण के समय भी जाति तत्त्व आधार माध्यम की भूमिका निभाते हैं। मंत्रिमंडल का गठन करते समय प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री को इस तथ्य पर नजर रखनी पड़ती है कि नीति–निर्माण, निर्णय–प्रक्रिया का निर्धारण तथा सभी प्रकार के प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन करने वाली इस वैधानिक इकाई में समाज की सभी प्रमुख जातियों को प्रतिनिधित्व मिले।
8. राज्य या केन्द्रीय स्तर पर नीति–निर्माण में जातियों की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण होती है। सरकार द्वारा अनेक मामलों में कई अवसरों पर अपने राजनीतिक फायदे के लिए किसी जाति विशेष को ध्यान में रखकर निर्णय लिया जाता है। इस रूप में जाति सक्रिय व सशक्त दबाव समूह की भूमिका निभाती है। दृष्टान्तस्वरूप अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों द्वारा डाले गये दबाव की वजह से संवैधानिक प्रावधानों के तहत दिये गये आरक्षण की अवधि बढ़ानी पड़ी तथा पिछड़ी जातियों द्वारा दिये गये दबाव के फलस्वरूप इन जातियों के लिए आरक्षण प्रावधानों का विस्तार करना पड़ा। केन्द्र सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करवाने के पीछे पिछड़ी जातियों के नेतृत्व का दबाव ही है। आरक्षण से संबंधित छात्रों के नामांकन, सरकारी नौकरियों में भर्ती, पदोन्नति तथा अन्य सभी प्रकार के लाभों से जुड़े तत्त्वों को प्रबलता से उठाने और सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों को उस पर निर्णय लेने के लिए बाध्य करने में जातीय संघों की भूमिका उल्लेखनीय होती है। भारतीय राजनीति में जाति तत्व इतना प्रभावी रहा है कि सेना एवं पुलिस में भी यह तत्त्व प्रधान अस्तित्व रखता है, तभी तो भारतीय सेना में सिख रेजीमेण्ट, जाट रेजीमेण्ट आदि के रूप में सेना की विभिन्न टुकड़ियों को विशेष पहचान व सम्मान दिया गया है।

जाति और राजनीतिके मध्य अन्योन्यक्रियाओं के सैद्धान्तिक आधार

(Theoretical Bases of Interactions between Caste and Politics)

भारत में जाति और राजनीति के मध्य निरन्तर चलने वाली अन्योन्यक्रियाओं से संबंधित कुछ सैद्धान्तिक आधारों की चर्चा की गयी हैं जो निम्नांकित है :

प्रथम–व्यवहारवादी एवं अनुभववादी विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त किये गये विचारों से यह स्पष्ट होता है कि राजनीति की सक्रियता का आधार माध्यम समाज है। राजनीति सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति है, यानी कि सामाजिक संबंध, सामाजिक तत्त्व एवं सामाजिक परिस्थितियां ही राजनीतिक संबंधों और राजनीति के स्वरूप का निर्धारण करती हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की संरचना की नींव जाति संरचना पर टिकी है और सामाजिक संगठन ही राजनीतिक संगठन का स्वरूप निर्धारक होता है। इस दृष्टि से व्यवस्थागत राजनीति को सशक्त बनाने में जाति आधारतत्त्व की भूमिका निभाता है।

द्वितीय–भारतीय राजनीति की प्रकृति व प्रवृत्ति में आये परिवर्त्तन के फलस्वरूप जाति तत्त्व भी नये रूप में नई शक्ति के साथ अपने संख्या बल के आधार पर दावेदारियां कर रहा है। चार दशकों तक जब देश की सत्ता पर एक ही दल कांग्रेस का प्रभुत्व था तो राजनीति में जातियों की सक्रियता की प्रकृति अलग थी। गठबंधन का दौर आरंभ होने तथा क्षेत्रीयता के तत्त्वों की प्रधानता सक्रिय होने के बाद सक्रिय राजनीति में जातियों की प्रकृति–प्रवृत्ति में काफी बदलाव आया है। चुनावी तालमेल और राजनीतिक सौदेबाजी में वे लड़ाकू रुख अख़्तियार कर रही हैं। लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं के मद्देनजर जातीय संरचनाओं के इस्तेमाल पर सरकार एवं सभी दलों द्वारा सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है ताकि वे अपने उम्मीदवार के लिए ज्यादा से ज्यादा समर्थन जुटा कर अपनी स्थिति मजबूत कर सकें। इस विषय सें प्रासंगिक दृष्टान्तों से इतिहास भरा पड़ा है। भारतीय सामाजिक संरचना में जाति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संगठन है, तो यह स्वाभाविक है कि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों आधारों पर व्यवस्थागत राजनीति अपने अस्तित्व को जातीय संगठनों के माध्यम से ही संगठित और मजबूत करने का प्रयास करेगी।

तृतीय–भारत में जातिगत आधार पर राजनीतिक दलों के निर्माण का प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है। जातीय संगठन राजनीतिक नेताओं को सत्ता तक पहुंचाने में मुख्य माध्यम की भूमिका निभाते हैं, इसीलिए भारतीय राजनीति सदैव जातियों की राजनीति के इर्द–गिर्द घूमती दिखाई देती है।

चतुर्थ–सभी जातियां संगठित होकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक प्रक्रियाओं में सहभागी बनती हैं। विशेष रूप से चुनाव के समय जातीय संघों, समुदायों की प्रमुखता देखते बनती है। सभी जातियों पर पूर्णरूप से चुनावी रंग का असर दिखने लगता है और वे प्रत्यक्ष रूप से चुनावी प्रतियोगिता में सक्रिय भागीदारी करती दिखाई देती हैं। राजनीतिक प्रभाववर्द्धन के लिए आधारतत्त्व के रूप में इस्तेमाल किये जाने की वजह से जातियों की प्रभावशालिता में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। वस्तुतः, समकालीन भारतीय राजनीतिक समाज में जातियां ही वास्तविक राजनीतिक शक्ति का रूप धारण कर चुकी हैं।

जाति के महत्व का राजनीतिक पहलू : रजनी कोठारी का दृष्टिकोण

(Political Aspects of Caste's Importance: Rajni Kothari's Approach)

प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Caste in Indian Politics' में भारत की राजनीति में जातियों की विशेष भूमिका का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इनका मानना है कि भारत की जनता जातिगत आधार पर संगठित है, अतः न चाहते हुए भी यहां की राजनीति को जाति संगठनों के प्रभाव और उनकी तात्त्विक यथार्थता का उपयोग करना ही पड़ेगा। इनके शब्दों में, ''राजनीति में जातिवाद का प्रसंग असल में जातियों की राजनीतिकरण का प्रसंग है।'' इसके पीछे तर्क है कि राजनीतिक संस्थाएं शून्य में सक्रिय नहीं रहती है, सक्रियता के लिए उन्हें समाज में अपना आधार तलाशना पड़ता है, इसलिए या तो वे समाज में मौजूद सांगठनिक स्वरूपों का इस्तेमाल करती हैं या इसके लिए किसी नयी संरचना का निर्माण करती है। हर हाल में राजनीतिक संस्थाओं को सामाजिक आधार ग्रहण करना पड़ता है। इस रूप में जाति ही राजनीति के लिए सामाजिक आधारभूमि है। इनका मानना है किभारत की जाति व्यवस्था और आधुनिक संसदीय राजनीति की अन्योन्यक्रियाओं की वजह से ही यहां सामाजिक परिवर्तन का मार्ग सरल हो पाया। जाति और राजनीति के मेल–मिलाप से बिना किसी भारी उठा–पटक के समाज का लौकिकीकरण हो गया। प्रो. कोठारी ने कहा है कि यदि कोई प्रश्नकर्ता यह पूछता है कि क्या भारत में जाति प्रथा समाप्त हो रही है ? तो यह प्रश्न इस विषय का स्पष्टीकरण करता है कि जाति और राजनीति दो परस्पर विरोधी इकाइयां हैं। इनका ये भी कहना है कि जो लोग राजनीति में जातिवाद के आलोचक हैं वे न तो राजनीति की प्रकृति को सही ढंग से समझ पाये हैं और न ही राजनीति में जाति के महत्त्व को। व्यवस्था में राजनीति और जाति दोनों एक दूसरे के पोषक हैं। जहां राजनीति के माध्यम से जातियों को बड़े पैमाने पर राजनीतिक सहभागिता का प्लेटफॉर्म मिलता है, वहीं राजनीतिक नेताओं एवं राजनीतिक दलों को जातीय आधार पर संगठित मतदाताओं का पूरा समर्थन मिल जाता है जो मजबूत वोट बैंक में तब्दील होकर उनके राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम बनता है।

जाति और राजनीति की अन्योन्यक्रिया पर प्रकाश डालते हुए **प्रो.रजनीकोठारी** द्वारा इसके तीन आयामों की प्रस्तुति की गयी है :

प्रथम–जाति व्यवस्था का लौकिक आयाम–जाति व्यवस्था के लौकिक रूप पर प्रो. कोठारी द्वारा विशद् विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इनके मतानुसार, जाति संदर्भित कुछ आम पक्षों पर सबका ध्यान आकृष्ट होता है, मसलन जातिरूपी इकाई के अन्दर मौजूद विवाह प्रथा, रीति–रिवाज, छुआछूत आदि प्रसंग जाति को एक पृथक् इकाई के रूप में पहचान दिलाता है, लेकिनजाति प्रासंगिक इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान आकृष्ट होता है कि सामाजिक व्यवस्थान्तर्गत मौजूद विभिन्न जातियां निरन्तर आपसी प्रतिस्पर्धा, एवं गुटबंदी में संलग्न होती हैं। सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत प्रत्येक जाति समाज में राजनीतिक प्रतिष्ठा और सत्ता–प्राप्ति हेतु संघर्षरत रहती हैं। उदाहरणस्वरूप, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश व केरल आदि राज्यों में जाति आधारित सत्ता–संघर्ष तथा चुनावों में विभिन्न जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका के साक्ष्यों से राजनीति का इतिहास भरा पड़ा है। बिहार में राजद या राजग की सरकार एवं उत्तर प्रेदश में सपा या बसपा की सरकार का निर्माण इस पक्ष का बेहतर उदाहरण है। प्रो. कोठारी की दृष्टि में जाति व्यवस्था के इस लौकिक स्वरूप का भी दो आयाम हैं : शासकीय पहलू एवं राजनीतिक पहलू।

प्रो. कोठारी की दृष्टि में जातियों का शासकीय पहलू गांव की पंचायत एवं सत्ता संरचना के विविध आयामों से संबद्ध है। जाति प्रथा के इस पक्ष की वजह से सामाजिक व्यवस्था में नेतृत्व को राजनीतिक गोलबन्दी के लिए संरचनात्मक–विचारधारात्मक सामाजिक आधार मिला है। इस वजह से विभिन्न जातियों में विद्यमान् सत्ता की आकांक्षा की दृष्टि से बनी सहमति को राजनीतिक मान्यता देनी पड़ी और उनके बीच मौजूद राजनीतिक स्पर्धा को परम्परागत शैली में संयोजित करके राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नये सिरे से संगठित किया गया। लौकिक स्वरूप का दूसरा पक्ष राजनीतिक है जो जातियों की आन्तरिक गुटबन्दी, प्रतिद्वन्द्विता तथा आपसी गठजोड़ से संबद्ध है। इस पक्ष का मूल प्रसंग भी सत्ता की आकांक्षा और आर्थिक लाभ की मांग से सीधा सरोकार रखता है। इस परिप्रेक्ष्य में स्पर्धारत समूहों द्वारा अपने

जनाधार को बढ़ाने हेतु तथा अपने समुदाय के लोगों में राजनीतिक चेतना जगाने हेतु जीतोड़ प्रयास किया जाने लगा है। इन संगठनों के प्रभाव का संदर्भ इस तथ्य पर निर्भर करता है कि स्थानीय नेतृत्व का समाज की केन्द्रीय सत्ता से कैसा संबंध है। आरंभिक दौर में इन संगठनों की शक्ति और प्रभाव का सरोकार स्थानीय नेताओं से था, लेकिन लोकतांत्रिक प्रक्रिया के मजबूतीकरण की वजह से इनका सीधा सरोकार सांसदों एवं विधायकों से हो गया है।

द्वितीय–जाति व्यवस्था का एकीकरण आयाम–जाति व्यवस्था का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष उसके एकीकरण स्वरूप का है। इसका तात्पर्य है कि जाति व्यक्ति को समाज से जोड़ने वाला महती कारक है। जाति व्यवस्था की वजह से जन्म से व्यक्ति सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत एक निश्चित स्थान प्राप्त कर लेता है। इस रूप में जाति प्रथा एक व्यक्ति के सिर्फ सामाजिक स्थिति का निर्धारण नहीं करती है, अपितु उसके व्यवसाय और आर्थिक पक्षों का भी निर्धारण करती है। चाहे कोई व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर कितना भी बड़ा पद क्यों न प्राप्त कर ले, अपने समाज के लोगों के प्रति उसके लगाव में कोई कमी नहीं आती है। जाति के प्रति व्यक्ति की निष्ठा में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। अपनी जाति के प्रति मौजूद निष्ठा ही विकसित होकर राज्य एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा में तब्दील हो जाती है। इस प्रकार, जातियां एक सामाजिक व्यक्ति को राजनीतिक व्यवस्था से जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करती हैं। स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अन्तर्गत समाज में विभिन्न जातीय समूहों के बीच सत्ता की आकांक्षा और आर्थिक लाभों की प्राप्ति हेतु शक्ति स्पर्द्धा चलती रहती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विभिन्न जातियों के बीच आपस में मिलकर गठजोड़ बनाने की प्रकृति स्पष्ट रूप से देखी जा रही है जिसका राजनीतिक उद्देश्य सत्ता से लाभ प्राप्त करना है या चुनाव में किसी विशेष उम्मीदवार को समर्थन देकर विजयी बनाना है।

इस पक्ष का आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि समाज और राजनीति एवं जाति और राजनीति की अन्योन्यक्रिया की वजह से एकीकरण के नये रूप की ओर कदम बढ़ा रही है। इस एकीकरण की ख़ासियत यह है कि इसमें आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं के साथ पारम्परिक समाज भी जुड़ा हुआ है। नये एकीकरण की प्रक्रिया में पारम्परिक निष्ठाओं के आधार को समाप्त करने की कोशिश नहीं की गयी है, लेकिन उनमें बदलाव लाने का पूरा प्रयास किया गया है, जो उनकी राजनीतिक सहभागिता के विस्तार से संबद्ध है। इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि राजनीति और समाज के बीच का यह जुड़ाव दरअसल जातीय संगठन और एकीकरण की विभिन्न प्रणालियों का जुड़ाव है। अपने पारम्परिक रूप में जातियां सामाजिक एकीकरण की वाहक हैं और इस भूमिका के अन्तर्गत वे स्थानीय और एकनिष्ठ अस्मिताओं पर जोर देते हुए जाति के अन्दर मौजूद विभिन्न समूहों और उन समूहों के अन्दर व्यक्तियों की भूमिकाओं का निर्धारण करती हैं। वहीं जातिगत राजनीति का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष भी है जो जातियों के अन्दर दलबन्दी एवं विभाजक तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता है। उनके अन्दर आत्मचेतना जागृत करके उन्हें उनकी अस्मिताओं का बोध कराता है और समय–समय पर उनमें संघर्ष के लिए नई गुंजाइशें पैदा कराता रहता है।

तृतीय–जाति व्यवस्था का चैतन्य आयाम–प्रो. कोठारी की दृष्टि में जाति व्यवस्था का तीसरा महत्त्वपूर्ण आयाम उनका चेतना बोध है। यह आयाम जातियों के सामाजिक स्तरीकरण तथा प्रतिष्ठा से संबद्ध है। पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है, तो भारत में इसका आधार जाति एवं वर्ण है। सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत जाति प्रथा में विभिन्न जातियों का एक संस्तरण पाया जाता है। सभी जातियाँ यह जानती हैं कि कौन सी जाति उनसे ऊंची है या नीची है और सभी इस संस्तरण के सत्य को स्वीकार भी करती है। लेकिन, वर्तमान समय में सामाजिक संस्तरण की स्थिति में काफी बदलाव आया है। निम्न जातियां अपनी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार लाकर जातीय संस्तरण में ऊँचा उठने के लिए प्रयासरत हैं। **डॉ. श्रीनिवास** ने इस प्रक्रिया के लिए 'सांस्कृतिकरण' (Sanskritisation) शब्द का प्रयोग किया है। इसका आशय यह हुआ कि आरंभिक दौर में समाज में व्यक्ति की पहचान और स्थान का निर्धारक जाति हुआ करता था, लेकिन अब व्यक्ति अपनी शैक्षणिक योग्यता, गुण, सम्पत्ति और राजनीतिक सामर्थ्य के आधार पर समाज में उच्च स्थिति प्राप्त करने लगा है, यानी कि सामाजिक स्तरीकरण का आधार अब जाति के बजाय व्यक्ति की योग्यताएं होती जा रही हैं। बड़े–बड़े नगरों में अपरिचितता का लाभ उठाकर निम्न जातियों के लोग भी अपने को उच्च जाति से संबद्ध बताने लगे हैं। वहीं कभी–कभी यह भी दिखाई पड़ता है कि बेरोजगारी से तंग आकर उच्च जाति के युवा आरक्षण का लाभ उठाने के लिए आरक्षित जातियों का जाली प्रमाणपत्र प्रस्तुत करके गलत तरीके से आरक्षित वर्ग के छात्र के रूप में अपना नामांकन कराते हैं या नौकरी पाने की कोशिश करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के दौर में जातियों को अपनी स्थिति में बदलाव लाने के लिए कुछ विशेष मार्गों को अपनाना पड़ता है ताकि जाति व्यवस्था में लोच और परिवर्तनशीलता बनी रहे। प्रो. कोठारी द्वारा इस परिप्रेक्ष्य में चार मार्गों का संकेत किया गया है :

1. **संस्कृतिकरण–**संस्कृतिकरण वह तरीका है जिसके माध्यम से छोटी जातियां अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ब्राह्मणों के रीति–रिवाजों को अपनाने का प्रयास करती हैं इसे ब्राह्मणीकरण की संज्ञा भी जाती है।

2. **लौकिकीकरण–**इसे अब्राह्मणीकरण तरीका भी कहा जाता है। लौकिकीकरण के अन्तर्गत विभिन्न अब्राह्मण जातियां ब्राह्मणों की नकल करने की प्रकृति छोड़कर आपसी तालमेल से सामाजिक–राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करती है। ऐसी प्रकृति अब्राह्मण जातियों में आर्थिक उन्नति राजनीतिक एकता एवं बौद्धिक विकास के प्रभाव की वजह से आती हैं।
3. **महापुरुषों के साथ संबंध जोड़ना–**इस मार्ग को अपनाकर समाज की कतिपय जातियां अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जमाने के लिए अपना संबंध राजनीतिक महापुरुषों या धर्म के पुरोधाओं के साथ जोड़ती हैं। दृष्टान्तस्वरूप, वैश्य जाति राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के साथ, हरिजन डॉ. अम्बेडकर के साथ, कुर्मी सरदार बल्लभ भाई पटेल के साथ, यदुवंशी भगवान श्री कृष्ण के साथ अपना संबंध जोड़कर समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं।
4. **आधुनिक राजनीति में सहभागिता–**यह रास्ता विभिन्न जातियों को राजनीतिक सहभागिता के लिए प्रेरित करने वाला तरीका है। इस मार्ग को अपना कर जातियां बड़े पैमाने पर राजनीतिक सहभागिता करके अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करती हैं। उदाहरणस्वरूप, बिहार, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों के अन्तर्गत निवास करने वाली जातियों द्वारा राजनीति में सक्रिय भागीदारी करके सत्ता के केन्द्रीय पद पर अपनी जाति के उम्मीदवार को सत्तारूढ़ कराया गया है।